Chap-4

चतुर्थ अध्याय : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों में नारी अस्मिता

भूमिका :

पूर्व के अध्याय में हमने लोकगीतों का गहन अध्ययन किया। अब लोकगीतों में नारी का क्या स्थान है? मेरे मतानुसार लोकगीत कोई व्यक्तिगत रचना न होकर पूर्णतः सामूहिक रचना है। जिसे लोग स्वान्तः सुखाय हेतु गाते हैं। लोकगीत मनुष्य के वह स्वाभाविक उद्‌गार हैं जो उसके अन्तर्मन में निहित हैं। हृदय के भीतर उमडने घुमडने वाले विचार, बातें जो उथल-पुथल मचाते हैं, वही लोकगीतों के रूप में प्रकट स्वरूप से बह निकलते हैं। अधिकांशतः पाया गया है कि लोकगीत चाहे वह राजस्थानी हो या गुजराती, अधिकतर नारी कंठ से अभिव्यक्त हुए हैं। नारी समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जीवन का अहम पहलू है जिसे आदिकाल से ही कभी अहमियत नहीं दी गई। नारी को सदैव से तुच्छ व उपभोग की वस्तु मान उसका स्थान नगण्य बना दिया गया जो कि सर्वथा अनुचित है। नारी सदैव से बेचारी ही बनकर रह गई। उसकी अस्मिता, उसका मान-सम्मान, गौरव न जाने कहाँ लुप्त हो कर रह गया। राजस्थानी व गुजराती लोकगीतों में नारी की भूमिका भी यही है। लोकगीत समाज को नारी वर्ग की सबसे बड़ी देन है। समाज तो दूर परंतु घर में भी उसके अस्तित्व जैसी तो कोई चीज़ ही नहीं। परिवार में नारी चाहे बहू के रूप में हो या बेटी के रूप में जगह वही। कही सास बन उसने जुल्म ढाए और कहीं बहू बन, पत्नी बन, नारी पिसती, सुनती दबती चली गई। यहीं से शुरु होता है लोकगीतों की रचना का सफ़र। जो नारी हर जगह तिरस्कृत, प्रताड़ित, अपमानित है, जिसके स्वयं के भी अरमान हैं, वह अपने हृदय की बात कहाँ ले जाए? किससे कहे? परिवार में सभी अपने होकर भी पराए हैं। मानव मन जिस आनंद की खोज में रहता है जिसे पाना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है उसे वह कहीं न कहीं से पा ही लेता है। अतः ऐसी नारी अपनी भावनाएँ अपने जीवन के विभिन्न अवसरों पर सखियों या देवरानी संग मिल बैठ उसे लोकगीतों के स्वरूप में ढाल हृदयोद्‌गार प्रकट कर देती है, निजानंद में मस्त हो जाती है। वह मौका चूकती नहीं। जो एक तरह से सर्वथा उपयुक्त है। अन्यथा ऐसी नारी जिसके हृदय की भावनाएँ कुचली गई हों, कभी न कभी अवसर पा ज्वालामुखी बन लावे के रूप में फट पडती है। समाज चाहे राजस्थान का हो या गुजरात का, नारी की दशा दोनों ही जगह शोचनीय है। जिसे देख मुझे मैथिलीशरण गुप्त की वह पक्तियाँ याद आ जाती हैं-

अबला जीवन हाय, तेरी यही कहानी, आँचल में है दूध, ऑखों में पानी।

अब हम राजस्थानी लोकगीतों में नारी की अस्मिता का स्वतंत्र अध्ययन करेंगे।

राजस्थानी लोकगीत राजस्थानी जनता के स्वाभाविक साहित्यिक उद्‌गार हैं जिनकी उत्पत्ति, सुख-दुःख, वीरता, हर्ष-शोक आदि विविध अनुभूतियों के परिणामस्वरूप हुई है। आज राजस्थानी लोकगीत केवल ग्रामीण वर्ग और आदिवर्ग में ही प्रचलित नहीं वरन् नगरों के सुसांस्कृतिक परिवारों में भी इसका प्रसार और महत्व है। सुसांस्कृतिक परिवारों में अनेक धार्मिक और सामाजिक पर्व और विधि-विधान लोकगीतों में संपन्न किये जाते हैं।[1]

---

1 राजस्थानी साहित्य का इतिहास : डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ. 145-149

जब ये गीत गाँव की महिलाओं के कंठ से निकलते हैं तो इनका सौंदर्य, माधुर्य और उन्माद कुछ और ही हो जाता है, जिसे व्यक्त करना नामुमकिन ही है। इन गीतों का अधिकांश रस तो इन महिलाओं के कंठ में होता है। हमारी कलम इस सरस रस की मिठास को अभिव्यकत न कर पाएगी। इन गीतों में नारी जीवन गाता है, रोता है, हँसता है, खिल्ली उडाता है, मुँह चिढाता है, व्यंग्य कसता है, प्रेम करता है, स्वच्छंद विहार करता है, रूप दर्शन पर रीझता व कटाक्ष करता है, ऋतुपर्वो का आनंद मनाता है, अपने दुःखों की शिकायत करता है, घर, खेत-खलिहान पर हर कार्य को गीतों की वाणी देता है, देवी-देवताओं की मनौती मानता है, रिमझिम वर्षा में जीवन रस का आह्वान करता है। या फागुन में निंबुओं की लपट का रस लेना चाहता है तो साथ ही सामाजिक समस्याओं, जातीय भावनाओं, जन आंदोलनों से उद्वेलित भी होता है।[2]

राजस्थानी लोकगीतों में नारी के विविध रूपों को बड़ी रूचि के साथ चित्रित किया गया है। लोकगीतों की निर्मात्री स्वयं नारी है। जिस प्रकार सूर्य की आभा रश्मियों में व्याप्त है उसी प्रकार नारी इन गीतों में सर्वत्र छायी हुई है। मानव जीवन सम-विषम, सत्य-असत्य, नया-प्राचीन, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि का एकीकरण है। ऐसी स्थिति में नारी के रूपों में विषमता जो दिखाई पड़ती है तो कोई आश्चर्य नहीं है। फिर भी मनुष्य की तुलना में नारी सदैव अधिक प्रशंसित देखी गई है। यदि नारी नरक का द्वार है तो मनुष्य स्वयं पाप का भंडार है। यदि नारी माया है तो नर उसका प्राण है। लोक साहित्य में नारी 'घरवाली' कहकर सम्बोधित हुई। किसी संस्कृत कवि ने नारी की प्रशंसा में ठीक ही कहा है-

कार्येषु मंत्री, करणेषु दासी, भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा,
धर्मेषु सहाया, क्षमया धरित्री, षड्गुण युक्ता सः धर्मपत्नी।

घरेलु जीवन की आत्मा नारी रही है। घर की लक्ष्मी वह है। सुख-दुःख के ज्वार भाटे को शांत चित्त से सहन करती हुई गृहस्थी की बागडोर सँभालती है। बवंडर भी उसे डिगा नहीं पाते।

युगों से चले आ रहे रीति रिवाजों, संस्कारो, त्यौहारों, विवाहों और पूजाओं में गाये जाने वाले गीतों को मौखिक रूप में सुरक्षित रखने का श्रेय महिलाओं को ही अधिक दिया जाता है। महिलाओं ने अपनी वृत्तियों के अनुरूप, सहज, स्फूर्तिवश अनुष्ठानिक, औपचारिक एवं मनोरंजनार्थ ही इन गीतों का सृजन किया जिसमें नारी की वेदना, हर्ष, विषाद, आनंद, उद्वेग, उत्साह, संयोग, वियोग, प्रताड़ना, घृणा और ग्लानि आदि भावनाओं की झलकें मिलती हैं।[2]

स्त्रियों के गीत हर समय पर गाए जाते हैं। जैसे सोहर, जच्चा, पलना, लोरियाँ, सावन के गीत, झूलने, झूमर, छठ के गीत, देवी-देवताओं की स्तुति के गीत, व्रत-उपवास, त्यौहार, पनिहारिन, भाई-बहन के गीत, साँझी आदि असंख्य गीत गाये जाते हैं। सास-ननद के शब्दबाणों से घायल, पति से तिरस्कृत, बेटे की दबैल और वृद्धावस्था में उपेक्षित नारी अपने समय-समय के भावों को गीतों में प्रकट करती है।

अधिकांश गीतों का जन्म घरों में ही हुआ। चक्की पीसते, झाडू लगाते, बर्तन माँजते, कपड़े धोते, रोटी पकाते, हँसते-रोते तो कभी खिलखिलाते हुए नारी गीत गाती है। नारी कंठ से अपने भावों और अभावों के जो उद्गार प्रस्फुटित हुए हैं वे उसकी उमंग, चंचलता, मुग्धता, हास्य प्रियता, राग द्वेष, घृणा, कुढन आदि

1-2. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन : डॉ कुलदीप, पृ. 22, 41-42

को व्यक्त करते हैं। राजस्थानी लोकगीतों में नारी एक और अत्यधिक भावुक, चतुर गृहिणी, स्नेहयुक्त सास, आज्ञाकारिणी पत्नी, मुग्धा नायिका और सच्ची प्रेमिका है तो दूसरी ओर व फूहड़, कर्कशा, कठोर हृदयहीन सास, चुगलखोर ननद और चरित्रहीन भावज भी है। कहीं नारी दुष्टा सौतेली माँ बनकर आती है तो कभी ईर्ष्यायुक्त सौत के रूप में दिखाई देती है। बहू-बेटियों के अलग-अलग रूप दिखते हैं। जहाँ बेटियाँ लाड़-प्यार मे पलती दिखती हैं वहाँ बहुएँ अभावों, घुटन और पीड़ा में कराहती प्रतीत होती हैं। बेटियॉ ससुराल लौटकर जाना नहीं चाहती और बहुएँ पीहर जाने को तरसती रहती हैं। कहीं उल्टी स्थिति है। बेटी पीहर में भौजाई से दुःखी है तो सास भी अपनी बहू के शासन में पीड़ित है।[1] लोकगीतों में अधिकतर सास को कर्कशा, कठोर और शुष्क दिखाया गया है। अपनी सास से दुःखी हो सावन में बहू तभी तो गा उठती है-

अब के बरस भेज भैया को बाबुल,
सावन में लीजो बुलाय रे।

अब हम राजस्थानी लोकगीतों में नारी से संबद्ध विविध रूपों की चर्चा, विविध आयामों से देख करेंगे।

(1) सामाजिक कुरीतियों की अभिव्यक्ति :

लोकगीतों में प्रतिबिम्बित स्त्रियों के जीवन की झाँकी में रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज और कारबार आदि के चित्रण के अलावा रूढिवादी प्रथाओं और पारिवारिक समस्याओं का भी परिचय मिलता है। राजस्थानी गीतों में प्रायः नारी अनपढ़ और अशिक्षिता के रूप में दिखाई पड़ती है। अनजाने में उसमें कहीं-कही उजड्डता का भी चित्रण हुआ है। लडने की प्रवृत्ति कभी सास के रूप में, कभी ननद या जिठानी के रूप में और कभी भावज बन आपस में कलह रखने के भाव गीतों में यहाँ-वहाँ पाये जाते हैं। पर उसकी उजड्डता और लडकपन में भी नारी हृदय की कोमल भावनाओं का सुंदर चित्रण हुआ है। तीज के एक गीत में राजस्थानी महिला को बाल्यावस्था में ही ससुराल में जाकर सास, ननद, जिठानी के तीखे वचन सुनना, सारे घर का कामकाज करना आदि सहन न होने से अपनी पीहर की याद आती है। उसे सब के निहोरे निकालने पड़ते हैं कि कोई ले जाए तभी जा सकती है। यही परवशता व्यक्त हुई है।

लाग्यो लाग्यो मां, सावण रो मास,
तीज तिवारां मां, बाबडी जे।
और सहेली मां पीवरियें ने जाय,
हूं तो तरसूं मां सासरे जे
वीरो आवे मारो पावणो जे।

एक गीत में सावन के महीने में लेने आए हुए भाई की पहुनाई करती हुई बहन अपनी दर्दभरी कहानी सुनाती है कि ससुराल में उसे क्या-क्या कष्ट झेलने पडते हैं -

घडी एक तो थाम रे वीरा, घोडलो।
करां रे मनडै री दोय बात,
मेहा झड मांडियो।

---

1. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन : डॉ. कुलदीप, पृ 44

पर माता की भावना और ससुराल के मान-सम्मान का खयाल रखती हुई कन्या कहती है माँ और भाभी से मेरा दुःख मत कहना, हॉ पिताजी से कह देना जो वह सुनते ही ऊँट पर बैठ आएँगे और मेरा दुःख दूर करने की चेष्टा करेंगे।

बाप जी सुणतां, वीरा, भला कह्यो।

मांडै रे करलै पलांण, मेहा झड मांडियो।

यह है हमारे देश के पीड़ित स्त्री हृदय की कहानी जिसे सुन और पढ़कर किसी का भी दिल द्रवित हो सकता है।

(2) बेटा-बेटी के भेद की अभिव्यक्तिः

नारी के भावी जीवन की दुखद कल्पना करके शायद बेटा-बेटी में भेदभाव रखना हमारे समाज की विशेषता बन गई है। आज के इस दौर में उक्त कथन सचोट बैठता है। आज बेटे के जन्म पर हर्षोल्लास मनाया जाता है, सारे शहर में मिठाई बाँटी जाती है पर कन्या बेचारी उसकी तो जन्म लेने से पहले ही माँ की कोख में ही हमेशा के लिए सुला दिया जाता है। कितना अत्याचार है बेटी पर, उसे 'डीकरी' कहकर घोषित किया है।

पाड़ोसण के जायो बालो नन्दलाल।

तो थांरी धण जायो बालो नन्दलाल।

आँगण बिच गुड भेली फोड़ावो।

तो सगळे सैर बॅटावो मेरा स्याम।

लड़की-लडके में भेद की भावना दाई को नेग देने में भी व्यंजित हुई है-

जे थारै जलमी धीय जी ओ राजन,

दाई माई नै कांई देसो?

एक रूपया रोकड़ी, दाई माँ नै देई देसां।

जे थारै जलमैलो पूत, दाई माई ने कॉई देसी?

पांच रुपया रोकडी, दाई माई नै दे देस्यां।

अर्थात् राजन तुम्हें पुत्री होगी तो दाई को क्या दोगे? राजन बोले एक रूपया नकद और यदि पुत्र हुआ तो पाँच रूपये नकद दिये जाएँगे।

विवाह के एक गीत से यह परिलक्षित होता है कि प्राचीन समय में मारवाडी कन्या को कितना अधिकार था। कन्या पिता से कहती है कि चाहे देश में न मिले तो परदेश में ब्याह दे पर योग्य वर देखें-

बागां बैठी बनड़ी पान चाबै फूल सूंघै,

करै ये बाबा जी सूं बीणती।

बाबाजी देस देता परदेस दीज्यो,

म्हारी जोड़ी रो वर हेरजो।[1]

1. पूर्ण गीत - राजस्थान के लोकगीत, सं. 71

एक अन्य गीत में भी बालिका अपने दादाजी से बिनती करते हुए कहती है कि वर ढूँढते वक्त इस बात का ध्यान रखना कि मेरा वर योग्य व गुणवान हो-

दादाजी, वर मांगूँ भगवान, देवर छोटो लिछमण जी।
दादाजी, सासू कौसल्या माय, सुसरो तो राजा जसरथ जी।

(3) बाल विवाह और अनमेल विवाह की अभिव्यक्ति :

समाज में प्रचलित बाल विवाह और अनमेल विवाह की भयंकर प्रथा और उसके दुष्परिणाम भी लोकगीतों से स्पष्ट प्रकट हैं । बाल विवाह की अभिव्यक्ति का उदाहरण-

थाळयां पड़यो काचरो तोरै लावण से गुड जाय, भँवरजी लावण से गुड जाय।
बिना अकल को सायबो तो बो सेजां सूं उठ जाय। सूवटा जंगल का बासी।

निम्न गीत में अनमेल विवाह की बात व्यक्त हुई है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कन्या पूर्णावस्था को प्राप्त व विवाह की उमंगों से भरी है पर बालम छोटी उम्र का होने के कारण सेजों के महत्व से अनभिज्ञ है। नारी की वेदना को देखिए। बूढ़े बालम के एक गीत में वृद्ध विवाह की अभिव्यक्ति-

ज्यानी म्हारा मरुं जहर बिप खाय,
बूढ़ै ने बेटी क्यूं देई ये मेरी माय। बूढ़े
गोरी म्हारी दमड़ां रो लोभी थारो बाप,
माया री लोभण मावड़ी अे मेरी ज्यान
माया री लोभण मावड़ी, बूढ़ै ने बेटी क्यूं देई।

आठ वर्ष की अबोध बालिका को तीस-चालीस वर्ष के प्रौढ़ अथवा १०, १२ वर्ष की कन्या को ५०-५५ साल के वृद्ध संग ब्याहना साधारण बात थी।

(4) दहेज की अभिव्यक्ति

दहेज के कारण माता-पिता को कन्या के विवाह के लिए बहुत कठिनाई का सामना करना पडता है। आर्थिक स्थिति की हीनता से वर ढूँढते-ढूँढते देर हो जाती है। फलस्वरूप किशोरी 'सूरजडी' गीत में परणने की याचना करती पाई जाती है।[1]

परंतु दायजे की प्रथा का सुंदर पक्ष भी है। अपने पिता और बाबा के दिये हुए गाडियों भरे दायजे पर प्रसन्न हो कन्या कहती है-

बाबो तो दीनो जी म्हांने दायजो, भर भर गाडी हंकवाय।
बाबल तो दीनो जी म्हांनै दायजो, गाड़ा रै दीना म्हांनै बैलिया।
गाड़ा दिया ए घड़ाय।

---

1 मारवाडी गीत संग्रह, भाग-6

अपने पीहर की चीज से हर नारी को कितना दुलार होता है यह हमारी संस्कृति का लक्षण है। इस 'बीजणी' जैसी साधारण वस्तु पर प्रकट किए उद्‌गारों में दायजे की प्रथा का सुंदर पक्ष दर्शनीय है-

म्हारी पीवर री बीजणी, जिवडाँ सू प्यारी बीजणी।
कुण गूंथी बीजणी, कोई या कुण दीनी दान?
भावज गूंथी बीजणी, कोई वीरो सा दीनी दान।
के लख मोती लागिया कोई, के लख लागी लाग? म्हारी.

जिस स्नेह से नारी माँ-बहन और भावज के रूप में कन्या (बेटी) के लिए चीजें तैयार करती हैं, और पिता भाई प्रदान करते है, वह अमिट अचल है। उसकी स्मृति के सहारे वह नये घर में जाकर भी अपना समय आनंद से बिताने में समर्थ होती है। चीज का मूल्य कुछ भी हो परंतु असली महत्व तो स्नेह का है।

(5) पर्दा प्रथा की अभिव्यक्ति :

डूंगजी जवारजी के गीत की निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट है कि राजस्थान की राजपूत महिलाएँ पर्दे में रहती थीं। डूंगजी की वीर पत्नी अपने पति के पकड़े जाने पर उन्हें छुडाने में उनके भतीजे जवारसिंह की उपेक्षा का भाव देखकर उत्तेजनापूर्ण शब्दों मे उपालम्भ देती है-

हाथां का हथियार सूंप दो, चूड़ी लाख की पैरो।
धोती जोडा उर सूंप दो, पगां घाघरो पैरो।
पड़दै भीतर लुकर बैठो, नैण काजल घालो।
मेरे कंथ की बेडी काटूं, मैं तिरिया की जात।[1]

उपरोक्त गीत में नारी के उद्‌गारों में ओज का गुण दर्शनीय है।

राजस्थान मे प्रायः घरों में भी सास, ससुर, जेठ, जेठानी एवं ननद आदि से घूंघटा निकलवाया जाता था जो इस निम्न गीत में चित्रित है -

सुसरो आयो लैण नै ये लुम्यां री डोरी,
कोई किण बिद ये मैं देऊँ जवाब, म्हारी ये लुम्यां री डोरी।
गज को काढू घूंघटो ये लुम्यां री डोरी।
इण बिद मैं देऊँ जवाब।[2]

(6) पति विरह की अभिव्यक्ति :

लोकगीतों में पति-विरह की भी अभिव्यक्ति नारी द्वारा अनुभव की गई है। ऐसे समय में आर्थिक स्थितियाँ पुरुष वर्ग को बाहर कमाने जाने के लिये मजबूर करती थीं। व्यवसायिक समाज होने के कारण भी दूर-दूर जाते थे। नारी उस वियोग की अभिव्यक्ति कर रही है। नारी जब उसका प्रियतम परदेस में हो तब

---

1. मरु भारती पत्रिका, फरवरी 54
2. मारवाड़ी गीत संग्रह, भाग-8

आकुल-व्याकुल हो जाती है। तब उसके हृदय की व्यथा लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त होती है। नारी की अवस्था दयनीय है। उसे पति का वियोग असहनीय है। ऐसी ही अभिव्यक्ति एक गीत में प्रस्तुत है जहाँ नारी अपनी ननद से शीतकालीन ऋतु में पति की अनुपस्थिति किस प्रकार खलती है उसी का वर्णन है -

जाडो तो पडियो नणद बाई डूँगराँ।
मारया मारया दादर मोर।
किस विध भुगताँ नणद बाई जाड़े ने ।[1]

इसी प्रकार 'बारह मासा' (मालवी गीत पृ. 18) में भी विरहिणी स्त्री की सहज मनोदशा का चित्र चित्रित है। जिसमें उसके लिए वर्ष के बारह महिने पति बिना गुजराने कठिन व दुखद है।

राजस्थान में तीज (सावणी आदि) के त्यौहार का बहुत महत्व है। स्त्रियाँ हर्षोल्लास से इसे मनाती है। परंतु न्मिन गीत में नारी (स्त्री) अपने प्रियतम पति के लिए तडप रही है। उसका पति नौकरी हेतु परदेस में है और यहाँ तीज आ गई है। अतः अपनी मनोव्यवथा इस प्रकार व्यक्त करती है कि पतिदेव आप जल्द घर आ जाएँ।

तीज सुण्यॉ घर आव।
मंझल आपसे नोकरी म्हारा राज,
तीज सुण्यां घर आव।[2]

इसी तरह पति के विरह मे तड़पती नारी की व्यथा भी एक निम्न गीत में बखूबी व्यक्त हुई है।

तू क्यों ए मेड़ी वैरण डगमगी, थारी लगी ए धरम की नींव[3]

इसमें विरहिणी नारी की व्यथा का चित्रण किया गया है।

(7) सौतिया डाह की अभिव्यक्तिः

एक नारी अपने जीवन में सब कुछ सह सकती है परंतु अपनी सौतन को कदापि माफ नहीं कर सकती। प्राचीन समाज में दो या तीन पत्नियाँ संतान न होने के कारण या किसी अन्य कारणवश रखी जा सकती थी। राजस्थानी लोकगीतों में नारी के जीवन के इस पहलू पर भी कहीं-कहीं प्रकाश पड़ता है। नारी को अपने पति के सुख व प्रेम के अलावा किसी भी चीज की झंखना नहीं होती, जिसे पाने के लिए वह सदैव तत्पर रहती है।

कुछ राजस्थानी गीतों मे सौतिया डाह की व्यंजना भी हुई है। अपने अधिकार के छिनने पर ईर्ष्या और मानसिक क्षोभ होना मानव स्वभाव है, फिर स्त्री क्यों कर अपने प्रेम में हिस्सा बँटाने वाली सपत्नी को सहन कर सकती है।

ऐसी ईर्ष्या को प्रकट करने वाला एक गीत नमूने के तौर पर देखिए-

1-2-3. अध्याय तृतीय (पूर्ण गीत अर्थ समेत इस शोध प्रबंध में)

परण्यो रे परण्यो ढोला पूगल रे परदेस
परण पधारया रे इये पूगल गढ़ री पदमणी रे म्हारा राज।
आडी रे आडी ढोला, मतिड़लां रे चुगाय,
निजरां नहीं देखां रे इये सोकड़ली रो मालती म्हारा राज।
गांगणिये रे ढोला हवद हरणाय, पितकलने पये रे मांझी,
सौकण वैरण मालती रे म्हारा राज
नाजणरियो वाजणियो ढोला घरहू मंडाय।
काना नहिं सुणों रे ये ई सोकडली नै बोलती म्हारा राज।

एक अन्य गीत में सौतिया डाह इस प्रकार हुआ है कि पत्नी कहती है मुझे पीहर भेज दो तब शादी करो और आगे चल कर कहा है कि फेरा लेते ही सौत मर जाए।

दारूड़ी गीतों में साधारणतया नारी के पति द्वारा सताई जाने की अभिव्यक्ति होती है-
दारुड़ी दाखां री म्हारै छैल भँवरजी नै थोड़ी-थोडी दीज्यो ये।
घालै ये म्हारी सोक कलाळी म्हारो बाजूबंद गैणो राख्ये ये।
आवैलो म्हारो मदछकियो बनडो, ज्यांनै थोड़ा-थोड़ा दीज्यो ये।

इसी प्रकार टिडी नथली, हँसली आदि आभूषणों का नाम ले ले पत्नी कहती है कि पति मेरे गहने गिरवी रख आयेगा। अतः दारू थोड़ी-थोडी देना। इस गीत में शराबी पति की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। साधारण स्थिति की महिलाएँ ऐसे पतियों की शिकार बन विवाह के समय सास ससुर का चढाया हुआ जेवर भी खो बैठती है और न देने पर पति से मार खानी पडती है।

(8) इन परिस्थितियों के अलावा अनेकों छोटी-मोटी घरेलू परिस्थितियाँ व उसमें नारी की अवस्था विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई है। जैसे नित्य प्रति झगड़ने वाले देवर के प्रति भावज की निम्नलिखित उक्ति में पारिवारिक झगड़े का एक चित्र-

देवर क्यों रे मचावै नित राड़, होज्या नी तडकै न्यारो रे।
देवर लेलै ऊँटा की एक झोट, भेड़यां को लेलै खेड़यो रे।
देवर लेलै सोवण ने लेलै एक खाट, ओढ़ण ने लेलै गूदड़ो रे।
देवर बोजा काटण नै लेलै एक गंडासी, बावण ने लेलै हळियो रे।
देवर लेलै धोराणी छाकियार, भतीजी हाळी रे । देवर.

नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व धारण करने में है। 'बाँझ' शब्द एक प्रकार से स्त्री के लिए गाली रूप में माना गया है। निःसंतान औरत को देवरानी-जेठानी, सास सबी के व्यंग्य बाणों को सहन करना पड़ता है। सवेरे पहले पहल उसका मुख देखने पर लोग अपशकुन मानते हैं। संतान प्राप्ति हेतु ऐसी नारी अनेक

मनौतियाँ मानती है। वह सूर्य, भैरव, राणकदे (सूर्य पत्नी) का आह्वान करती है। निम्न गीत राजस्थान का है जिसमें नारी राणकदे से संतान प्राप्ति हेतु प्रार्थना करती है-

छींका तौ पडियौ अे माता चूरमौ अे
ठणकै सिरांवण मांगण वालौ नहीं, अे माता राणकदे।
म्हांनै मांणस क्यांनै सिरज्या?[1]

कितनी निराशा है नारी के उद्‌गारों में। ऐसा लगता है मानो सारा जीवन जलकर खाक हो गया हो। परिणामस्वरूप ऐसी आह निकली है कि हे प्रभु मुझे मनुष्य क्यों बनाया? बालक के खाने हेतु सबकुछ है पर खानेवाला नहीं है।

आगे गर्भ धारण करने पर भी नारी को चैन नहीं क्योंकि परिवार वाले संतान के रूप में पुत्री नहीं वरन् पुत्र की ही कामना करते हैं। अतः एक लोकगीत में नारी पुत्रप्राप्ति की कामना व्यक्त करते हुए भैरव की आराधना करती है-

'सासू तो कैवे म्हारी बहवड़ बांझड़ी
परणियो लावै ल्हौडी सौक
अेकलियै रा सीरी चढती असवारी हेलौ सांभलौ
भैरू बाबा कदैयन भींजी दूधां कांचली
कालूडा कदैयन कांधै टपकी लाल
कासी रा बासी अमर बंधादो नीं जुग में पालणौ
कासी रा बासी पुतर बिन बाजूं म्हें कुल में बाँझड़ी।[2]

ठीक इसके विपरीत पुत्र जन्म पर हर्षोल्लास मनाया जाता है। पिता की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। वह खुले हाथ से दान देना चाहता है -

'रण चढ़ण, कंकण बंधण, पुत्र बधाई चाव
अै तीनूं त्याग रा, कहा रंक कहा राव

भला लोक साहित्य इस लाग डाँट में पीछे कब रहता-

हे थारै गीगौ ए जलमियौ आधी रात अे
हे थारै गुल बैंच्यौ परभात अे
उठो मानेतण खोलो कोथळो, बैंचो बधायां दोनू हाथ सूं अे।[3]

राजस्थानी लोकगीतों में कहीं-कहीं पर नारी के तेज-तर्रार रूप का वर्णन भी है। उसे किसी की लाज शरम नहीं है। वह तो खरी-खरी सुनाना जानती है। सास तक को नहीं बख्शती

मोटो कियौ तौ कांई ह्वियौ बूजीसा मन बनसा
आप जीमिया सूंठ अर गूंद मन बनसा।

इसी तरह नारी के विभिन्न रूप इन गीतों में दृष्टिगोचर होते हैं।

1-2-3. राजस्थानी लोकसाहित्य का सैद्धातिक विवेचन : डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 31, 32, 36

प्रकृति स्वरूप स्त्री प्रेम की आदिशक्ति है। नारी अपने प्रेम से पुरुष को वशीभूत कर लेती है। यही प्रेम का वशीकरण है जिसे राजस्थान में कांमण कहते हैं। पति को व्यसनों से मुक्त विलग करने के लिए कांमण किया जाता है-

नवल बनी रा वाभीजी पधारिया
सौ कांमण वे जांणै
आधी रोटी जांन जीमावै
पंथेरी नै पगां चलावै
अधसेरै नै अधर नचावै
काचै तांतण कुऔ जुतावै
तौ कांमण रा परचा पावै।[1]

इस तरह नारी पति को अपने वश में कर सुखी जीवन जीना चाहती है। नारी का यहाँ पत्नी रूप प्रकट होता है।

नारी एक बहन भी है जो अपने भाई के आने से परम सुख का अनुभव करती हुई कहती है-
धन आज म्हाँरे, आकाश सुख रवि ऊगे रे
कदी-कदी मिलूँ म्हाँरा भाई वाट यूँ जोती रे।
अब आई पल सुखदाई मनु ने म्होती रे
माँ जण्या भाई ने एक चाहूँ नहि कश्यान रे।[2]

नारी जब विवाह कर ससुराल जाती है तब उसके मन में अनेकों उमंगें हिलोरे लेती हैं। वह कल्पना लोक में विचरण करने लगती है। परंतु श्वसुर गृह में कदम रखते ही यथार्थ पर आ खड़ी होती है। सास, सुर, ननद, देवर सभी के बीच स्वयं को अकेला पा असहाय महसूस करती है और ऐसे में वह माँ और सास के स्वभाव की तुलना कर बैठती है जो निम्न गीत से प्रतीत होता है-

मीठी मीठी अे माँ, अे म्हारी मतीराँ री बेल
मीठौ मावड़ रौ बोलणौ
खारा खारा अे माँ अे म्हारी, तूंबां मांयला बीज
खारौ सासूजी रो बोलणौ।

एक अन्य गीत में ससुराल की यातना का चित्र इंगित है-

दोरी दोरी अे मां अे म्हारीं पूतां नै पौसाळ, दोरौ धीया नै सासरो
दोरौ दोरौ अे मां अे म्हारी सासूनणदरौ साल, दोरौ कसौटो देखणौ
दोरौ दोरौ अे मां अे म्हारी जंवारौ खांण, दोरौ मक्की रौ पीसणौ।[3]

यहाँ नारी को सास के रूप में चित्रित किया गया है। सास के रूप में नारी के कठोर स्वभाव को उभारा गया है। 'घरटी' (चक्की) फेरते या पीसते समय गाये जाने वाले एक गीत में ऐसी ही यथातथ्य स्थिति का चित्रण हुआ

1,3 राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन : डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 57, 75
2. अध्याय तृतीय, इसी शोध प्रबंध में

है जिसमें गीत की नायिका बहू तो नींद लेना चाहती है पर सास के भय से उसे सवेरे जल्दी उठकर चक्की चलाना पड़ रही है-

रामजी सणण सणण बोलै रात
घरटी री वेळा होयेगी जी राम[1]

हमारा समाज ठेठ गाँव में कृषक बन जीवन गुजारता हुआ, दिनभर बैल ले खेतों को जोतता, श्रम करता दिखाई पड़ता है। जिसमें उसका साथ उसकी पत्नी निभाती है। नारी पत्नी बन पुरुष के कंधे से कंधा मिला काम करती है। राजस्थानी लोकगीतों में कृषक पत्नी कार्यरत है परंतु शाम को घर आकर अक्सर उसकी पति के हाथों पिटाई हो जाती है। 'गुमाना हाळीजी' नाम गीत में इस बात का उल्लेख हुआ है अतः लोकगीत लोकजीवन का दर्पण है व नारी की दशा प्रतिबिंबित करने वाला आईना है-

'सूळां री तौ लीनी है कांबड़ी हां रे हाळीजी
झडझड़ झुरडिया है मौर गुमाना हाळीजी।'

नारी चिरकाल से ही आभूषण प्रिय रही है। इन गीतों में नारी का श्रृंगार के प्रति आभूषणों से लगाव प्रकट होता है। जब नारी जी-तोड मेहनत करती है तभी तो वह पति से आभूषण प्राप्त करने की स्वयं को अधिकारिणी समझती है। परंतु जब उसकी इच्छा पूर्ण नहीं होती उसके मन की मन में ही रह जाती है, वह गाती है-

'म्हारै हथेलियां रै मांय छाला पड़ग्या म्हारा मारुजी
म्हें पालौ कींकर बाढूंजी
डेरां रौ काटियौ म्हें खेतां रो बाढ़ियौ
ओ तो बाडां रौ म्हांसूं न काटयौ जावैं म्हारा मारुजी
रखडी तो म्हारा पिवरिया घड़ाई
आ तो सांकळी री म्हारै मन मे रैगी म्हारा मारुजी।[2]

नारी व्यथा प्रकट करती है प्रियतम मेरी हथेलियों में छाले पड गए हैं, मुझसे फसल न कटेगी। कुछ आभूषण मेरे पीहर से आए पर सांकळी की इच्छा तो मेरे मन में ही रह गई।

राजस्थानी लोकगीतों में नारी जीवन की विडम्बनाओं एवं व्यथाओं का भी निरूपण हुआ है। चरखौ नामक निम्न गीत में नारी जीवन की कर्मशीलता का जोरदार चित्रण हुआ है। गृह स्वामी की निष्क्रियता का उदाहरण मिलता है। कर्मशीला नारी का और अकर्मण्य नर का ऐसा तुलनात्मक वर्णन कहाँ मिलेगा-

'अरे चरखे री कमाई
म्हारी नणदल ने परणाई
नणदल मै परणाई यक
म्हारै हिंवडै हांस घड़ाई
भूं बेली चरखा भूं।

1. अध्याय तृतीय, इसी शोध प्रबध मे
2. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन : डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 85, 86

ओ पनरे बरस सूं खाविंद आयौ, कांई कांई चीजां लायौ
हाथ में होकलियौ लायौ
चिणा चाबतौ आयौ
भला भूं बेली चरखा भूं।[1]

चरखे की कमाई से स्त्री ने अपनी ननद का ब्याह भी किया व स्वयं के लिए हंसडी बनवाई। भला हो उस बेली चरखे का। और निकम्मा खाविंद जब घर आया तो हाथों में हुक्का ले चने चबाता हुआ आ पहुँचा। भला हो चरखे का।

वीरता मानव जीवन का वरेण्य गुण है। अपने शौर्य व हिम्मत के आधार पर मानव स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध कर सका है। युद्धभूमि में वीरता का प्रदर्शन करने वाले, वीर कहलाने के अधिकारी हैं। राजस्थानी लोकगीतों में पुरुष व नारी दोनों ही की वीरता का वर्णन हमें मिलता है। इन गीतों में नारी के ओज गुण का प्रदर्शन मिलता है। वीरांगना नारी सदैव ही पूजनीय वंदनीय है। ऐसी वीरांगना नारियाँ क्रमश जसमा ओडनी व सजना के शौर्य का प्रदर्शन राजस्थान के लोकगीतों में हुआ है।

यहाँ नारी के वीरत्व का दर्शन कराती 'सजना' का उल्लेख करती हूँ जिसने पितृ आज्ञा को शिरोधार्य मान जैमल राजा की चाकरी पर मर्दाना वेष धारण कर जाती है। अपूर्व साहस के साथ वह अपने कर्तव्य एवं पितृकुल की मर्यादा को निभाती है। 'सजना' का वीरत्व नारी के गौरव को चार चाँद लगा देता है। उसी की वीरता का परिचय कराता हुआ लोकगीत-

'होगी सजना घुडले असवार।
दिन तो उगायो ए बाई, सजना बाबोजी रे देस में
ऊलूँगी सजना समँद-तलाब।
चुड़लो दिखायो जी बाई सजना बाबे हाथ रो।
उठ ओ बाबाजी, ढकियो फल सो खोल
बारै बरसा री चाकरी ओ बाई,
सजना कर आई चाकरी।'[2]

ऐसी ही एक अन्य वीर नारी जसमा जो अद्वितीय रूपवती थी, ओड़ पत्नी थी। धारा नरेश भोज उस पर मुग्ध हो जाता है। उसने अनेक प्रलोभन दिखाये परंतु जसमा ने पति-प्रेम-त्याग को सदैव अश्रेयस्कर और हेय समझा और राजा को नीति कथन सुनाया जो कितना उचित प्रतीत होता है-

राजा! रीत न छांडिजै, समवड़ करौ सनेह।
समवड़ सूं सुख पायजै, नीचं के हो नेह॥[3]

कितना सचोट कथन है जसमा का जिने नारी के सम्मान को बुलदियों तक पहुँचा दिया व विवेहकीन राजा को विवेक का ज्ञान करा दिया।

1. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन : डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 121
2. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत
3. राजस्थानी बातां - भाग 1, नरोत्तम स्वामी, पृ. 28

नारी का गौरवपूर्ण रूप भी लोकगीतों में मिलता है। सती-साध्वी और पतिव्रता स्त्रियों की प्रशंसा के अनेक गीत मिलते हैं। राजस्थान और उसके आस-पास गनगौर के गीत सती नारी की प्रशंसा में ही हैं। मालवी में भी अनेकों गीत मिलते हैं।

गुजराती लोकगीतों में नारी अस्मिता :

लोकगीत प्रत्येक प्रांत की अपनी निजी धरोहर है। गुजरात में लोकगीत का अर्थ 'अपनी मिट्‌टी की महक' या 'अंतरमन से बहनेवाला झरना' ऐसा माना जाता है। गुजरात के लोकगीत प्रांतीयता की अपनी अनोखी छाप लिए हुए हैं। श्री झवेरचंद मेघाणीजी के अनुसार ये लोकगीत 'धरती का अमृतमय दूध' हैं। वीरभूमि (सौराष्ट्र) होने के कारण यहाँ लोकसाहित्य में मुख्यतया युद्ध व प्रेम गाथाएँ वर्णित विषयों के रूप में हैं। शौर्यगाथाओं में भी पत्नी, बहन और माताओं के त्याग एवं बलिदान के उत्साहप्रेरक संदेशों की ही बहुलता मिलती है। इन गीतों में सर्वत्र नारी ही नारी छाई हुई है। यहाँ की नारियाँ त्यौहार, उत्सव, मेला, समारोह, शादी-ब्याह आदि अवसरों पर गाए बिना नहीं रह पातीं। इन्होंने पूरे जीवन को ही गान समझ लिया है। प्रत्येक प्रांतों की बोलियों ने अपने रीति-रिवाज, संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार एवं व्यवहारों के नारी समाज ने लोकगीतों के साँचे में ढालकर अपनी-अपनी भावना को प्रस्तुत किया है। स्त्रियों के मनोभाव लोकगीतों में व्यक्त हुए हैं क्योंकि भावनाओँ एवं उर्मियों के आघात सहने करने पड़े ऐसी उसकी सामाजिक स्थिति रही है। ऐसी स्त्रियों के सुख व दुःख उन्मुक्त रूप से प्रकट हुए हैं।

स्त्रियों ने ही सर्वप्रथम गीतों को जन्म दिया हो तभी तो जरुर मानना चाहिए कि नारी ने स्वयं की भावनाएँ, आशा-निराशा, आनंद-शोक, प्रणय व विरह को वाचा देने का प्रारंभ किया। नारी ने इन गीतों में मार्दव और करुणा भरे तथा अंतर के छोटे से छोटे भावों को गीतों में निःसंकोच व्यक्त किया। प्राकृतिक विपदाएँ, जीवन की जरुरतें, संघजीवन की विषमताएँ, परस्पर कलह और कौटुम्बिक या सामाजिक बंधन इत्यादि नारी के साथ जुड़ गए हैं और इसी के तले उसकी संवेदना पिसकर रह गई। सासु माँ के जुल्म या ननद का सफेद झूठ, जेठानी के ताने या देवर का टेढ़ापन यह सब तो ठीक है जो उसके हृदय को दुःखी करते हैं, परंतु जिससे जन्म-जन्मांतर का साथ जोड़ा है, उसके जूते-चप्पलों की मार, पीहर भेजना या परस्त्रीगमन करना ये सब उसकी मृदु हृदय पर अंगारे की तरह पडते हैं। नारी के कलेजे पर साँप लोटते हैं।

नारी जीवन की सबसे बडी समस्या यह है कि वह एक नारी है। नारी होने के कारण वह ऐसे सामाजिक बंधनों में जड़ी हुई है कि उसकी संवेदना में से विपुल साहित्य का सृजन हुआ है। नारी भावनाशील सदैव से रही है। यह उसकी स्वभावगत प्रकृति है। अतः सामाजिक विषमता का संवेदन भाव की बहुमुखी आयामों द्वारा लोकगीतों मं अभिव्यक्त हुआ है। नारी ने क्षण-क्षण के संसार जीवन को लोकगीतों में चित्रित कर दिया है जो विविधता से भरपूर है। इन गीतों में नारी विभिन्न रूपों मे़ं ऊभरकर सामने आई है। उसके जीवन में कितना वैविध्य है -

बेटी की बाल्यावस्था के लालन-पालन, कोमल भावनाएँ, प्रेम और माता-पिता के वात्सल्य भाव के गुजराती लोकगीत सबसे मधुर व सुगंधित महक से भरे पड़े हैं। भाई-बहन का निश्छल प्रेम, बेटी के लाड-

प्यार इत्यादि भाव समाहित हैं। किशोरावस्था में पहुँचते ही उसका (नारी) मन पंख लगा उड़ने लगता है। स्वप्नलोक में विचरण करता है। मुग्ध भावों से भरे हुए हैं लोकगीत। विवाह के पश्चात पुरुष से परिचय पति रूप में प्राप्त करती है। आशाएँ लगाए बैठी है पितृगृह में जिसे प्राप्त करने के लिए अनेक व्रत-तप किए ऐसे पति से संयोग के साथ वियोग भी प्रारंभ होता है। यहीं से स्त्री जीवन की जटिलता शुरु होती है। गृहजीवन में से उठनेवाली समस्याओं का सास-ससुर-देवर-जेठ और ननद को संतोषपूर्ण जवाब तो नारी को ही देने पडते हैं। सबसे उपस्र अपने प्रियतम को। अनजाने वातावरण में जा उसके अनुकुल हो रहना, भिन्न-भिन्न प्रकृति वालों के प्रत्येक बोल को सहना, सभी के मिजाज को सँभालते जाने की जटिल स्थिति से पार उतरना है। ऐसी अवस्था में ही नारी जीवन की विषमता पैदा होती है।

दूसरी ओर नारी जीवन सुख के समुद्र में हिलोरे भी लगाता ह और इसी में से कभी राग, द्वेष, ईर्ष्या जन्मती है। मिठास का स्थान धीरे-धीरे घृणा ले लेती है। प्रेम का स्थान क्रोध ले लेता है। आवेग, उद्वेग, आवेश आदि से परिपूर्ण क्रोधमय, असह्य, दुःखमय जीवन को नारी इन लोकगीतों द्वारा सह्य बनाती है। दूसरे पहलु में नारी दांपत्य जीवन के सुख भोगते हुए श्रृंगार, सौंदर्य का आनंद भी लूटती है। वह प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल में बदलना जानती है।

जीवन की इन दोनों विरोधी अवस्थाओं में भी नारी ने जीवन के जहर को पचाकर लोकगीतों में सौंदर्य, करुणा, प्रेम, त्याग व समर्पण के अमृत का सींचन किया है। नारी जीवन के इस शिवत्व ने – इस कल्याण भावना ने लोकगीतों के अमृतकुंभ सर्जित किये हैं।

अब हम गुजराती लोकगीतों में नारी के विविध रूपों की चर्चा विविध आयामों से करेंगे।

(१) जीवन का घटनाचक्र माता के उदर से प्रारंभ होता है। संसार की मंगलमय घटना तब मानी जाती है जब विवाहिता नारी की गर्भावस्था प्रारंभ हो। नारी माँ बन सर्वाधिक आनंदानुभूति प्राप्त करती है। परंतु मन से सदैव 'रांदल माँ' से पुत्र प्राप्ति की कामना करती दृष्टिगोचर होती है। क्योंकि समाज की धारणा पुत्र प्राप्ति के लिये है। इस कारण वह गाती है-

लींप्यु गूंप्यु मारुं आंगणुं
पगली नो पाडनार द्यो ने रन्नादे।[1]

उसके हृदय के कोने में डर है कहीं पुत्री न हो जाए अन्यथा सास-ननद-जेठानी सभी के तोन सहन करने पड़ेंगे। परंतु पुत्र जन्मते ही घर में उसके मान-सम्मान में इज़ाफा हो जाएगा। सर्वत्र आनंद ही आनंद छा जाएगा।

मॉ बनते ही नारी ममतामयी करुणामयी मूर्ति बन अपने लाड़ले के लालन-पालन में व्यस्त हो जाती है। उसका कान्हा चाहे काष्ठ के पालने में सो रहा है पर उसके लिए तो वह सोने के पालने में ही सोएगा, जो हीरा-मोती से जड़ित होगा।

साव रे सोनानुं मारुं पारणियुं ने
घूघरी घमकार, बाळा पोढ़ो ने।[2]

1-2. अध्याय तृतीय, गुजराती लोकगीत (पूर्ण गीत अर्थ समेत इसी शोध प्रबंध में)

शौर्य यानी वीरता शूरवीरों का आभूषण माना जाता है। समाज में वीरता का महत्व था इस पर भी प्रकाश पडता है। गुजरात में भाट, चारणों ने वीर रस के द्वारा राजाओं, वीरों एवं अपने आश्रयदाताओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अतः माताएँ अपने शिशुओं को पालने में झुलाते समय लोरियों में भी वीरगीत गाती हैं। शिवाजी की माता जीजाबाई की तरह गुजरात की प्रत्येक माँ बच्चों को पालने में ही शौर्य संस्कार और शिक्षा आशीर्वाद के रूप मे देती आई है। सौराष्ट्र के लोक कवि झवेरचंद मेघाणी गाते हैं-

जननी ना हैयामां पोढंता पोढंता
पीधो कसुंबी नो रंग
धोळा धावण केरी धाराए धाराए
पीधो कसुंबी नो रंग, हो राज मने लाग्यो कसुंबी नो रंग।

अर्थात् माता के उदर में रहते-रहते ही शौर्य के कसुंबीर (केसरिया) रंग को आत्मसात कर लिया है एवं धवल शुभ्र दुग्ध के साथ-साथ उसी कसुंबी रंग का पान भी कर रहा हूँ। बचपन के संस्कार रंग लाते हैं। गुजरात की नारी ने मॉ बन शिवाजी की तरह वीर साहसिक बनने की सीख लोरियों में अपने बच्चे को दी-

शिवाजी ने नींदरु न आवे
माता जीजाबाई झुलावे।

माताऍ शिवाजी सा शूरवीर बनने का संदेश पालने के गीतों में देती है-

भींते झूले छे तलवार
दादा जी केरी भींते झुले छे
भेटे झुले छे तलवार
वीराजी केरी भेटे झुले छे।

(बूढ़े दादाजी की तलवार अब दीवार पर मौन होकर म्यान में पड़ी हौ और वीराजी यानी वनराज चावड़ा की तलवार इनकी कमर में झूल रही है।)

वैसे तो लीकजीवन पुरुषप्रधान है। परंतु बालस्वरूप तो पुत्र या पुत्री समान रूप से प्रिय है। लोकगीतों में पुत्री के पालना गीत भी रंगीन रूप से चित्रित किए गए है।

(2) लोकगीत नारी कंठ से ही गाए जाते हैं और उसका अधिकांश भाग स्त्री विषयक ही है। कुमार से ज्यादा कुमारिका के गीत इसके साक्षी हैं। बालिकाएँ गोरमा अर्थात् गौरी (पार्वती) व्रत अच्छा पति मिले, अच्छा घर हो इस हेतु करती है। गौरी के पूजा हेतु उसकी पूजारिन (नारी) उसके द्वार पर खडी है-

गोर्य गोर्य माडी, उघाडो कमाडी,
तमारी पूजारी आवी रे
गौर्य पूजे छे गोपी रे । (पूर्ण गीत पृ. ४७)

इस गौरी व्रत के पीछे बालिका का उद्वेश्य स्वर्ग से ससुराल को पाना भी है। ससुर स्वादिष्ट खानेवाला व सासुमा खानेवाली हो ऐसा आग्रह पुत्रवधुएँ रखती हैं। कहना माने वाला पति, देवर-जेठ-जेठानी आदि से

भरापूरा संसार चाहती है।

गोर्यमा गोर्यमा रे सासरो देजो सवादियो

गोर्यमा गोर्यमा रे सासु देजो भूखाळवां

गोर्यमा गोर्यमा रे कंथ देजो कोडामणां। (पूर्ण गीत पृ. ४७)

उस समय भी शायद पुत्री को अपना वर कैसा हो यह बताने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। अतः गाती है-

कन्या दादाजी ने खोळे बेठा अेम भणे रे

दादा वर जोजो कांई देश मायलो देव रे (पूर्ण गीत, पृ. 148)

आगे पुत्री के मन में अच्छा योग्य वर पाने की आकांक्षा है। उसे पता है दादा, बाबा या भाई ही वर ढूँढने जायेगा। और उन्हीं की पसंद मानी जायेगी। इससे यह भी पता चलता है कि पितृ समाज की ही सत्ता थी, मातृ समाज की नहीं। अतः वह दादा से कहती है-

एक नीचो ते वर नो जोशो रे दादा

नीचो ते नत्य ठेबे आवशे।

(अर्थात् बौना दूल्हा मत ढूँढना वर्ना हररोज चलते-फिरते मेरे पैरों से टकराएगा)

इतने व्रत-तप करने के बाद भी उसे जिसके दांत गिर गए हों ऐसा वृद्ध पति मिले तो उसकी दुर्दशा किसे कहे? जीवन में लगी ऐसी आग को कैसे बुझाए? यहाँ नारी कुमारिका रूप में उभरकर आती है।

(3) कौमार्य के व्रत विनोद बाद विवाह का उत्सव नारी जीवन में आता है। विवाह भागकर मनाने का उत्सव नहीं परंतु भाई-भौजाई (भावज), बहन-बहनोई, बृहद् परिवार संग चबा-चबा कर जीने मनाने का सुअवसर है।

शादी से पहले मन में उर्मिल अरमान संजोनेवाली कँवारी बेटी शादी के बाद किसी के घर की बहू बनकर डोली में बैठने चलती है तो घर का आँगन ही मानो समंदर बन जाता है, जिसे वह पार नहीं कर पाती। आँखों में आँसू और हृदय में प्रेम लिए गृहत्याग कर जब एक अनजाने परदेशी के साथ वह चल पडती है, तब उसके हृदय में शुरु होती है मनोमंथन की एक लंबी प्रक्रिया और अनगिनत सवाल-

केवा सासु केवा नणंद जेठाणी रे

केवी पाडोशण ने पितराणी रे

त्यां नहि दादा ने त्यां नहि माडी रे

त्यां नहि सहियर कोई समाणी रे

कोण आंखलडी ना आंसुडा लुतु रे

कोण लळी लळी मोढडा जोतुं रे?

अर्थात् कैसी सास, ननद, जेठानी और पडोसन कैसे मैं जानूं। वहाँ मेरे दादाजी, माता और सखी-सहेली कोई न मिलेगा। मुझे बार-बार स्नेह से कौन देखेगा? अनजान प्रदेश में आँसू कौन पोंछेगा?

विदाई के समय नारी माँ बन पुत्री को ससुराल में स्नेह सहित मिलजुल कर रहने की सीख देती है-

समजु बाळकी जाय सासरे, वचन माडीनुं ध्यानमां धरे

श्वसुर पक्षमां लाज थी रही, कसुर काममां कीधुंअे नहीं। (पूर्ण गीत, पृ. १२१)

श्वसुर गृह में दुल्हन बन प्रवेश करती नारी के हृदय में मीठे सपने संजोए बैठी है।

रे आज झीणा मारुजीनी झीणी पछेड़ी पथराय रे।
साग सीसमनो ढोलियो रे, ढोलिये सूता कोण रू भाई राजा रे? (पूर्ण गीत, पृ. १२९)

(4) दांपत्य प्रेम मानव जीवन का मूल आधार है। विश्वास की इस आधारशीला पर जीवन की इमारत सुरक्षित रहती है, पत्नी पति पर अटूट विश्वास जाहिर करती है-

एक हालार शैर ना हाथीडा,
कंह आव्या अमारे देश मोरली वागे।
छेल छोगाळो होय तो मूलवे,
डोलरियो दरिया पार मोरली वागे छे।

हालार शहर के हाथी हमारे देश मे आए हैं इन्हें देखकर मन मे आनंद की मुरली बजने लगी है। मेरा छेला, बालम पति सर पर छोगा यानी फेंटा (पगड़ी) बाँधने वाला यहाँ होता तो उसे खरीद लेता किंतु वह तो दरिया पार (विदेश) में है। यहाँ नारी के मन का विश्वास पति के प्रति दृष्टिगत होता है।

पत्नी बन नारी के मन में एक ही बात केवल आती है, बालम के मधुर बोल की। मीठे वचनों को सुनते ही मानो उसका जीवन धन्य हो जाता है-

गाजे वडलो विहंगतणा गान थी रे, मांहे टहूके कळायेल मोर
मने वहाला बालम जी ना वेणला रे, जाणे वरसे मंद-मंद मेहूलो रे
जाण फूलडां झरे कोई फोरंता रे, लळी आवे सागर तणी लहेर
भले वरसे अंगार कोई अनिथी रे,
भले करवत थी काळजु कपाय, रहे रसनी सरित उरे रेलती रे
पडी जूठा संताप सहू जाय।

प्रियतम के बोल इतने शीतल सुखद हैं मानो रेगिस्तान में झरना। ससुराल में भले बादलों से अंगार बरसते हों, संताप से मन उत्तप्त हो जाए लेकिन प्रियतम के मीठे वचन सुनते ही मानो रस की मधुमय सरिता उर से बह निकलती है। लोकगीत गुजरात की नारियों को इसलिए भाता है कि उसने उसे सहनशीलता, धैर्य प्रदान करके विपरीत परिस्थितियों में, संघर्ष में भी जीना सिखाया है।

कई लाखो निराशा मां अमर आशा छुपाई छे।

दांपत्य के संयोगात्मक पक्ष में कहीं-कहीं नारी प्रियतम को रिझाती हुई मनुहार मान मनौवल, वस्त्राभूषणों की मॉग करती हुई भी दिखाई पडती है।

स्वकीया सुंदरी पति को प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह के वस्त्राभूषणों से शरीर को सजाती है।

सोना वाटकडी रे केसर घोळ्या वालमिया
लीला ते रंग नो छोड़ रंगमा रोळ्या वालमिया

कडय परमाणे रे कमखो जोशे वालमिया

चुंदड़ीनी बब्बे जोडय रंगमा रोळ्या वालमिया।

स्वर्ण की कटोरी में केसर घोलकर हे बालम! हरे रंग का जो स्नेह का पौधा है उसके साथ मैंने जोड़ दिया है। मेरी कमर की नाप से मुझे चोली (कांचली, कमखो) चाहिए साथ ही साथ ओढ़नी की एक नही बल्कि दो-दो जोड़ी चाहिए।

सुंदरी यौवन के श्रृंगार से मढकर शोभा में अभिवृद्धि करती है, पति को रिझाती है।

छेलाजी रे, म्हारे हाटु पाटण थी पटोळा मोंघा लावजो

अेमा रुडां मोरलिया चितरावजो पाटणथी पटोळा मोंघा लावजो। (पूर्ण गीत पृ. स. १३१)

(5) नारी जहॉ पति से संयोग पक्ष में सुख स्वप्नों में रची बसी रहती है, वहीं उसका उर्मिशील हृदय पति के वियोग में दर्द, व्यथा अनुभव करता है। प्रियतम के परदेस चले जाने पर नारी विरह में व्याकुल होकर प्रियतम तक संदेश पहुँचाना चाहती है-

कुंजलडी रे संदेशो अमारो, जइने व्हाला ने कहेजो रे

प्रीति कांठाना अमे रे पंखीडा, प्रीतम सागर विण सूना जी।

पति के परदेस जाने पर वह रो कर गाती है-

पियु हमारा शीद चाइला परदेश रे वा'ला

जी रे आ, कागळिया लखी मोकलजो कटका मारा वा'ला। (पूर्ण गीत, पृ. १३२)

'वेरण चाकरी' (नौकरी) में जाने की नौबत सौराष्ट्र के एक सैनिक के परिवार में आती है तो उसके बेटे की पत्नी रोकर सुनाती है-

चाकरीए मारा ससराजी ने मेलो रे,

अलबेलो नहीं जाय चाकरी रे लोल

(नौकरी पर मेरे ससुरजी को भेजो मेरा प्रियतम नौकरी करने नहीं जाएगा।)

और पति को चाकरी पर जाना पडा तो पत्नी पूछती है-

झाली झाली घोडरियानी वाग रे

अलबेला क्यारे आवशो रे लोल

कब लौट आओगे? पति जवाब देता है-

गणजो गोरी पीपरडीना परण

एटले ते दहाड़े आवशुं रे लोल।

सचमुच पीपल वृक्ष के पर्ण गिनते रहने तक की अवधि देकर जाने वाला पति कभी आएगा भी या नहीं? विरह की मार्मिकता का कोई जवाब नहीं। यही विरह व्यथा की पराकाष्ठा है।

(6) सौतिया डाह – (लोकगीतों में सपत्नी)

जैसे कि राजस्थानी लोकगीतों में सौतन के बारे में विवरण मिलता है उसी तरह गुजरात के समाज में भी गुजराती लोकगीतों में सपत्नी का भाव मिलता है। नारी चाहे किसी भी प्रदेश, देश में हो, किसी भी धर्म, जाति से जुड़ी हो, परंतु समाज में उसकी दशा एक-सी है। नारी को सभी ने धरती के समान क्षमाशील, सहनशील और धैर्यवान कहा है। सच भी है नारी धीरजवान, सहनशील है परंतु जब उसके आत्म-सम्मान की बात आ जाती है तब किसी को माफ़ नहीं कर सकती। चाहे फिर उसके सम्मान को ठेस पहुँचाने वाला कोई भी हो। नारी अपने पति को स्व से बढ़कर चाहती है, उसके सुख-दुःख में सदैव साथ निभाती है। कदम-कदम पर पति के साथ, उसके बच्चों के लालन-पालन में स्वयं को भी वह भूला बैठती है। गृहस्थ जीवन में पूरी तरह रम जाती है। ऐसे में जब पति ही उसके सम्मान को ठेस पहुँचाए, सौतन से नाता जोड़ बैठे तब उसके दिल पर क्या बीतती होगी? अपना अधिकार बँटते देख कोई भी नारी उसे कैसे सह सकती है? जिस पति के हृदय पर एकचक्री शासन किया हो उस पर किसी और का आधिपत्य वह कैसे सह सकती है?

'कुमारपाळ रासो' में जैन कवि ऋषभदेव लिखते हैं–

सामेरी सुलख्खणी, चढीने रावल चऊं कि
हुं तुम पूछुं रे पंडिता, सूलि भली किई सोकि?
सूलि एक ज कठडो, सोकि अनंता कठ;
नित मरीई, नित मारीई, हइडा पग पग हठ।
लोयण पेठुं तणखलुं, खटकई वारोवार;
सूलि आपई अेक मरण, सोकि दई सो वार।[1]

सुलक्षणी सामेरी पूछती है, कि हे पंडित शूली (फाँसी) अच्छी है या सौतन? उसका जवाब पंडित थोडे ही देता? सौतन के दुःख का एक पुरुष को क्या अहसास होता? शूली तो भली है जो एक झटके में मौत दे देती है, परंतु सौतन का दुःख नारी को सौ-सौ मौतें मारता है। नारी ही नारी की बडी दुश्मन बन जाती है। पुरुष ने जब सौतन को अपनाकर अपनी ब्याहता के साथ जब अन्याय किया तभी उसके हृदय के हजारों टुकडे हुए जिसे चुनते हुए एक नारी के मुख से अंगारे निकले–

हत् मारी शौक्य, तने वींछी करडे
(मेरी सौतन हठ् तुझे बिच्छू काट जाए)

ऐसी अति पीड़ाकारी संवेदना ही लोकगीत का आकार ले बैठी–

हो रंग रसिया, क्यां रमी आव्या रास जो,
आंखलड़ी राती ने दीसे उजागरी।

तो सामने रसिया बालम ने बेधड़क कह दिया

अमे ग्यांता गोरी,मानेती ने मोल जो;
सोगठडे रमतां वाणलां वाइ गयां रे लोल।

---

1. लोकगीतोमां सपत्नी : श्री सोमचंद्र जोधाणी (लोकसाहित्य अंक), पृ. 5

अर्थात् नारी पति से पूछती है रसिया बालम सारी रात कहाँ रहे, रास रचा आए। मेरी आँखें रातभर जागती आपका इंतजार करती रही, जागरण करना पडा। तो निर्लज्ज पति उत्तर में कहता है मैं तो अपनी चहेती के महल पर गया था वहीं शतरंज खेलते वक्त बीत गया, पता ही न चला।

कितनी दयनीय दुर्दशा है नारी की जो ऐसे नश्तर चुभोने वाले वचन उसे पति से सुनने पड रहे हैं। कभी-कभी पति कमाने के लिए परदेस भी जाया करते थे। वहीं उनकी आँखें सौतन से चार हो जाती थी जिसे फिर घर ला पटकते थे ब्याहता की छाती पर मूँग दलने-

परण्यो ग्यो'तो मुंबी नी खेपे रे,
न्यांथी लाव्यो कणबण शोक्य रे।
अेना सारु कांबीओ घडावी रे,
अमने घडाव्या खोटा खांपिया।[1]

अर्थात् मुंबई शहर में नौकरी करने गया और वहाँ से सौतन उठा लाया जिसके लिए विविध गहने बनवाए, ब्याहता के लिए कुछ नहीं मामूली से।

अतः नारी अपने ससुरजी से फरियाद कर कहती है कि सारे हक उत्तम वस्तुएँ मेरी ही हो और हीन वस्तुएँ सौतन को देना। फिर प्रियतम को अपनी ओर वापस खींचने के उद्देश्य से गाती है-

लालजी, सामी ते हवेली मारी चगेमगे
हो लाल, वे'ला आवजो रे।
लालजी, सामी ते झूंपडीओ मारी शोक्यनी,
हो लाल, वे'ला आवजो रे।
लोलजी, सोना बेडलियां मारा चगेमगे,
हो लाल, वे'ला आवजो रे।
लालजी, कादुनां बेडलियां मारी शोक्यनं,
हो लाल, वे'ला आवजो रे।

प्रियतम से कहती है अपना सामने महल झगमग चमक रहा है, घर जल्दी पधारना और महल के सामने सौतन की झोंपड़ी है। मेरे घड़े सोने के हैं जबकि सौतन के पास मिट्टी के। अतः घर पर ही पधारना। नारी पति को समृद्धि की झाँकी दिखा रिझाने का प्रयास करती है कि शायद पति लौट आए उससे अच्छा और क्या हो सकता है। कितनी करुण मनोदशा है।

अपने प्रेम में हिस्सा बाँटने वाली सौतन को नारी पॉव की ठोकरें मार ठेलना-धकेलना चाहती है-

'ठेबे उडाडती जाऊँ रे, मोरली वागी रे वनरावनमां'।

नोरी सोचती है कि पति को पसंद आई तब तक तो ठीक है, परंतु हमेशा गले पडनेवाली, स्वयं का हक छीनने वाली को कैसे सहे? जो ब्याहता हमेशा पति संग बैठती अब सौतन के आने से कहीं स्थान नहीं ऐसी स्थिति

1 लोकगीतोमां सपत्नी : श्री सोमचंद्र जोधाणी (लोकसाहित्य अंक)

कैसे बर्दाश्त करे? अंततः नारी सोचती है-

'मानेती शे मरे रे, अबोला शे भांगे भगवान'

हे ईश्वर, पति की चहेती सौतन कब मरेगी? कब मेरा पति मेरे पास लौटेगा? हे प्रभु उस सौतन की जीवन डोर जल्द ऊपर खींच लेना। तो कहीं आनंद आएगा।

मा, मारी शोक्य तो मांदा पडिया रे,
मा, अेने शा शा ओसडियां पाउं रे, मानेती शोक्य ने रे।
आकडो, धतूरो, एलियो घोळीने पाव। (पूर्ण गीत लोक साहित्य माळा मणको ९, पृ. ३०३)

अंत में सौतन मृत्यु शैया पर पड़ती है और उसकी मौत होती है। तब कहीं जाकर उस पति प्रेम के लिए प्यासी ब्याहता के कष्टों का अंत होता है। उसके जीवन में पतझड के बाद वसंत ऋतु आती है।

प्रत्येक प्रदेश व प्रांत में हर युग में नारी ने सौतन के दुःख को लोकगीत गाकर हृदय भार हल्का किया है। इतनी विविधता के साथ नारी ने इन गीतों को जब प्रस्तुत किया तब यह सौतन उसके हृदय में असंख्य बाणों की तरह चुभती होगी। फिर भी ऊपर से हँसती हुई नारी से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह बाणों की शय्या पर ही सोई होगी? यही मर्मान्तिक पीडा उसके लोकगीतों में प्रकट हुई है।

(7) इन परिस्थितियों के अलावा घरेलु परिस्थितियाँ भी हैं जहाँ नारी के विभिन्न रूप द्रष्टिगोचर होते हैं। जैसे नारी भाभी के रूप में देवर संग मजाक करती हुई पाई जाती है। देवर जो कि छोटे भाई समान है अपनी भौजाई को तंग करता है, उसका हवा झलने का पंखा छिपा लेता है, तभी भाभी उसे प्राप्त करने के लिए देवर को विभिन्न चीजों का लालच देती है-

अधमण सोनुं सवामण रूपुं
तेनो में तो वींझणो घडावियो
वींझयो मेली ने हुं तो जळ भरवा गई ती
जाने दियरिये लीधो। (पूर्ण गीत, पृ. सं. १३६)

इस तरह भावज और देवर के बीच मीठी नोंकझोंक चलती रहती है। ननद भावज के झगडे भी चलते रहते हैं। ननद-भौजाई का गीत-

माडी जायो ते मधुर मोरलो रे लोल,
भाभी ढळकती शी ढेल जो;
भाभी ना भाव मने भींजवे रे लोल।

(ननद भाई को मधुर मोर और भाभी को नृत्य करती मोरनी कहकर उसके प्रेमभाव में भीगी हुई है) तो भाभी ननद के लिए विशेषण युक्त संबोधन करती है-

आवो, आवोने महियर मीठडां।
तमे आवो ने मारी सासुना श्वास।

बिलकुल सही है, ससुराल में बसी हुई बेटी में नित्य प्रति माँ की सॉस बसी हुई प्रतीत होती है। लोकगीत जीवन के मधुर रिश्तों के संवेदनापूर्ण गीत हैं जो रिश्तों के माधुर्य को बढ़ाते हैं। देवर भी भाभी को मेहंदी से हाथ रंगकर उसका रंग भाई तक पहुँचाने का अनुरोध करता है-

नानो देरीडो लाडको ने, कांई लायो मेंदी ना रोप रे, मेंदी रंग लाग्यो ।
कापी-कूपी ने कर्या कोडीयां ने, भाभी रंगो तमारा हाथ रे, मेंदी रंग लाग्यो।

कहीं-कहीं लोकगीतों में नारी सास के रूप में कठोरतम रूप से प्रकट हुई है। सास का बहू के प्रति जो रूख है उसी से वह दुःखी हो जाती है और बरबस ही वह सास की तुलना माँ से कर बैठती है। संसार में बेटी सर्वाधिक मधुर एवं सम्मानित अपनी माँ को मानती है-

मीठा मधु ने मीठा मेहुला रे लोल,
ए थी मीठी मोरी मात रे।
जननी नी जोड़ सखी नहीं जडे रे लोल,
वरसे घडीक व्योम वादळी रे लोल,
माडी मेघ बारे मास रे, जननी जोड़....[1]

(मेघ और मधु तो मीठे हैं, लेकिन उनसे भी मीठी मधुर मेरी माता है। हे सखि, ऐसी जननी की कोटि में कोई आ ही नहीं सकता। आकाश की बदली तो थोडी देर के लिए ही बरसती है किंतु माता के प्रेम का मेघ (बादल) तो बारह मास (आजीवन) बरसता रहता है।) बेटी के हृदय में माता की ममता घर कर गई है तो माता का हृदय तो ममता का महासागर है। बेटी को ससुराल भेजते समय माँ का हृदय वश में नहीं रहता। अतः कभी ढोल बजाने वाले ढोली को सूचना देती है कि धीरे से ढोल बजाना, मेरे हृदय में घाव पड़ रहा है तो कभी बैलगाडी को बिनती करती है-

धोरी! धीमे तमे चाल जो रे मारुं फूल न फरके
उडी जशे एक पळ एक मां रे, एनुं काळजुं थड़के।

बैल, तुम धीरे-धीरे आगे बढ़ना। मेरे फूल को आँच न आनी चाहिए। अगर उसे जरा-सी खरोंच पहुँची तो कलेजा फटकर उसके प्राण एक ही पल में उड़ जाएँगे।

एक ओर माँ की ममता न्यारी है तो दूसरी ओर वही नारी एक कठोर सास भी है। चक्की पीसते-पीसते थकी बहू को नींद आ जाती है। चूहा चक्की में से आटा खा जाता है। बाद में ननद आटा तौलती है तब आटा कम पडता है और बहू पर चोरी का आरोप लगाया जाता है। ननद-भावज को खूब जली-कटी सुनाती है और सासुमाँ मारती है। निम्न गीत में बहू ससुराल से त्रस्त है-

काली ते भो ना कोदर्या रे,
दळजो झीणेरो लोट।
दळतां ते वहुने झोलुं आवियुं रे,
ऊंदर खाई ग्यो छे लोट। (पूर्ण गीत पृ. १४३)

1. गुजराती लोकगीत : डॉ. कृष्णा गोस्वामी, पृ. 231

यहाँ नारी के हृदय से व्यथा निकलती है। दूसरी और नारी बहन भी है जो अपने भाई से अनन्य प्रेम करती है। भाई-बहन की प्रीति अनोखी होती है। सौराष्ट्र में विवाह के बाद ससुराल में 'आणा तेडवा' बहन को लिवाने भाई ही जाता है। ऐसे भाई को ससुराल वालों ने कहा कि अभी हम तुम्हारी बहन को नही भेजेंगे, खेतीबाडी का कामकाज है। तब भाई बहन को लिए बगैर घर आया और दुःकी होकर अपनी माँ से कहने लगा-

एक मत जलमो माता ! बेनडी ने बेनडी रूवे परदेश।

सात जलम्ये माता बेटडा ने बारे बवटावा खेड।

(सात बेटे भले पैदा हो लेकिन एक भी बेटी पैदा नहीं होनी चाहिए। सातों भाइयों की एकमात्र बहन को भी दूसरों के अधीन होकर ससुराल में रोना ही पड़ता है।)

जहाँ सौराष्ट्र प्रदेश के योद्धा राजपूतों की प्रशंसा में चारण कवियों ने चार चाँद लगा दिए हैं वहीं सौराष्ट्र की नार भी वीर है। यहाँ गिरनार जूनागढ के जंगलों में चारण जाति के मालधारी (जाति) लोगों के नेसडे (झोंपड़े) होते हैं। श्री मेघाणीजी ने एक दिन सैर करते हुए देखा कि एक बारह-तेरह साल की चारण बालिका गिरनार के जंगल में से गुजरती है और सामने से शेर आ धमकता है। तब बालिका ने बड़े सहज भाव से उसे डाँटना-धमकाना शुरु किया। अब जंगल में शेर के साथ रहने वाली उस बच्ची को शेर का भय कैसा? तब उस वीर कन्या के शौर्य की प्रशंसा करते हुए मेघाणीजी ने गाया-

तेर वरसनी चारण कन्या

बाळी भोळी चारण कन्या

लाल कसुंबल चारण कन्या।

बारह-तेरह साल की चारण कन्या बालिका है, भोली है। निर्दोष है, मुख पर शौर्य का लाल कसुंबी रंग झलकता है। वन जंगल में जब शेर की दहाड़ सुनाई देती है तो कन्या भी गरजती है कि गिरनार के कुत्ते, खड़े रहना, मैं अभी आती हूँ। जैसे उसे शेर का कोई भय नहीं है। संसार के लिए यह शेर है गिर जंगल की पहाडियों मे बसने वालों के लिए तो वह सिर्फ कुत्ता मात्र है। वास्तव में नारी की वीरता इस गीत में उभरकर आई है।

इस प्रकार ये लोकगीत नारी की सामाजिक दशा की भावाभिव्यक्ति हैं।

***